पिंजर

जब मैं पढ़ाई की पुस्तकें समाप्त कर चुका तो मेरे पिता ने मुझे वैद्यक सिखानी चाही और इस काम के लिए एक जगत के अनुभवी गुरु को नियुक्त कर दिया। मेरा नवीन गुरु केवल देशी वैद्यक में ही चतुर न था, बल्कि डॉक्टरी भी जानता था। उसने मनुष्य के शरीर की बनावट समझाने के आशय से मेरे लिए एक मनुष्य का ढांचा अर्थात् हड्डियों का पिंजर मंगवा दिया था। जो उस कमरे में रखा गया, जहां मैं पढ़ता था। साधारण व्यक्ति जानते हैं कि मुर्दा विशेषत: हड्डियों के पिंजर से, कम आयु वाले बच्चों को, जब वे अकेले हों, कितना अधिक भय लगता है। स्वभावत: मुझको भी डर लगता था और आरम्भ में मैं कभी उस कमरे में अकेला न जाता था।

यदि कभी किसी आवश्यकतावश जाना भी पड़ता तो उसकी ओर आंख उठाकर न देखता था। एक और विद्यार्थी भी मेरा सहपाठी था। जो बहुत निर्भय था। वह कभी उस पिंजर से भयभीत न होता था और कहा करता था कि इस पिंजर की सामर्थ्य ही क्या है? जिससे किसी जीवित व्यक्ति को हानि पहुंच सके। अभी हड्डियां हैं, कुछ दिनों पश्चात् मिट्टी हो जायेंगी। किन्तु मैं इस विषय में उससे कभी सहमत न हुआ और सर्वदा यही कहता रहा कि यह मैंने माना कि आत्मा इन हड्डियों से विलग हो गयी है, तब भी जब तक यह विद्यमान है वह समय-असमय पर आकर अपने पुराने मकान को देख जाया करती है। मेरा यह विचार प्रकट में अनोखा या असम्भव प्रतीत होता था और कभी किसी ने यह नहीं देखा होगा कि आत्मा फिर अपनी हड्डियों में वापस आयी हो। किन्तु यह एक अमर घटना है कि मेरा विचार सत्य था और सत्य निकला।

2.कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक रात को गार्हस्थ आवश्यकताओं के कारण मुझे उस कमरे में सोना पड़ा। मेरे लिए यह नई बात थी। अत: नींद न आई और मैं काफी समय तक करवटें बदलता रहा। यहां तक कि समीप के गिरजाघर ने बारह बजाये। जो लैम्प मेरे कमरे में प्रकाश दे रहा था, वह मध्दम होकर धीरे-धीरे बुझ गया। उस समय मुझे उस प्रकाश के सम्बन्ध में विचार आया कि क्षण-भर पहले वह विद्यमान था किन्तु अब सर्वदा के लिए अंधेरे में परिवर्तित हो गया। संसार में मनुष्य-जीवन की भी यही दशा है। जो कभी दिन और कभी रात के अनन्त में जा मिलता है।

धीरे-धीरे मेरे विचार पिंजर की ओर परिवर्तित होने आरम्भ हुए। मैं हृदय में सोच रहा था कि भगवान जाने ये हड्डियां अपने जीवन में क्या कुछ न होंगी। सहसा मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई अनोखी वस्तु मेरे पलंग के चारों ओर अन्धेरे में फिर रही है। फिर लम्बी सांसों की ध्वनि, जैसे कोई दुखित व्यक्ति सांस लेता है, मेरे कानों में आई और पांवों की आहट भी सुनाई दी। मैंने सोचा यह मेरा भ्रम है, और बुरे स्वप्नों के कारण काल्पनिक आवाजें आ रही हैं, किन्तु पांव की आहट फिर सुनाई दी। इस पर मैंने भ्रम-निवारण हेतु उच्च स्वर से पूछा-"कौन है?" यह सुनकर वह अपरिचित शक्ल मेरे समीप आई और बोली- "मैं हूं, मैं अपने पिंजर को दिखने आई हूं।"

मैंने विचार किया मेरा कोई परिचित मुझसे हंसी कर रहा है। इसलिए मैंने कहा-"यह कौन-सा समय पिंजर देखने का है। वास्तव में तुम्हारा अभिप्राय क्या है?"

ध्वनि आई- "मुझे असमय से क्या अभिप्राय? मेरी वस्तु है, मैं जिस समय चाहूं इसे देख सकती हूं। आह! क्या तुम नहीं देखते वे मेरी पसलियां हैं, जिनमें वर्षों मेरा हृदय रहा है। मैं पूरे छब्बीस वर्ष इस घोंसले में बन्द रही, जिसको अब तुम पिंजर कहते हो। यदि मैं अपने पुराने घर को देखने चली आई तो इसमें तुम्हें क्या बाधा हुई?"

मैं डर गया और आत्मा को टालने के लिए कहा- "अच्छा, तुम जाकर अपना पिंजर देख लो, मुझे नींद आती है। मैं सोता हूं।" मैंने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस समय वह यहां से हटे, मैं तुरन्त भागकर बाहर चला जाऊंगा। किन्तु वह टलने वाली आसामी न थी, कहने लगी- "क्या तुम यहां अकेले सोते हो? अच्छा आओ कुछ बातें करें।"

उसका आग्रह मेरे लिए व्यर्थ की विपत्ति से कम न था। मृत्यु की रूपरेखा मेरी आंखों के सामने फिरने लगी। किन्तु विवशता से उत्तर दिया- "अच्छा तो बैठ जाओ और कोई मनोरंजक बात सुनाओ।"

आवाज आई- "लो सुनो। पच्चीस वर्ष बीते मैं भी तुम्हारी तरह मनुष्य थी और मनुष्यों में बैठ कर बातचीत किया करती थी। किन्तु अब श्मशान के शून्य स्थान में फिरती रहती हूं। आज मेरी इच्छा है कि मैं फिर एक लम्बे समय के पश्चात् मनुष्यों से बातें करूं। मैं प्रसन्न हूं कि तुमने मेरी बातें सुनने पर सहमति प्रकट की है। क्यों? तुम बातें सुनना चाहते हो या नहीं।"

यह कहकर वह आगे की ओर आई और मुझे मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति मेरे पांयती पर बैठ गया है। फिर इससे पूर्व कि मैं कोई शब्द मुख से निकालूं, उसने अपनी कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

3.वह बोली-"महाशय, जब मैं मनुष्य के रूप में थी तो केवल एक व्यक्ति से डरती थी और वह व्यक्ति मेरे लिए मानो मृत्यु का देवता था। वह था मेरा पति। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मछली को कांटा लगाकर पानी से बाहर ले आया हो। वह व्यक्ति मुझको मेरे माता-पिता के घर से बाहर ले आया था और मुझको वहां जाने न देता था। अच्छा था उसका काम जल्दी ही समाप्त हो गया अर्थात् विवाह के दूसरे महीने ही वह संसार से चल बसा। मैंने लोगों की देखा-देखी वैष्णव रीति से क्रियाकर्म किया, किन्तु हृदय में बहुत प्रसन्न थी कि कांटा निकल गया। अब मुझको अपने माता-पिता से मिलने की आज्ञा मिल जाएगी और मैं अपनी पुरानी सहेलियों से, जिनके साथ खेला करती थी, मिलूंगी। किन्तु अभी मुझको मैके जाने की आज्ञा न

मिली थी, कि मेरा ससुर घर आया और मेरा मुख ध्यान से देखकर अपने-आप कहने लगा- "मुझको इसके हाथ और पांव के चिन्ह देखने से मालूम होता है यह लड़की डायन है।" अपने ससुर के वे शब्द मुझको अब तक याद हैं। वे मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उसके कुछ दिनों पश्चात् मुझे अपने पिता के यहां जाने की आज्ञा मिल गई। पिता के घर जाने पर मुझे जो खुशी प्राप्त हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती। मैं वहां प्रसन्नता से अपने यौवन के दिन व्यतीत करने लगी। मैंने उन दिनों अनेकों बार अपने विषय में कहते सुना कि मैं सुन्दर युवती हूं, परन्तु तुम कहो तुम्हारी क्या सम्मति है?

मैंने उत्तर दिया- "मैंने तुम्हें जीवित देखा नहीं, मैं कैसे सम्मति दे सकता हूं, जो कुछ तुमने कहा ठीक होगा।"

वह बोली- "मैं कैसे विश्वास दिलाऊं कि इन दो गढ़ों में लज्जाशील दो नेत्र, देखने वालों पर बिजलियां गिराते थे। खेद है कि तुम मेरी वास्तविक मुस्कान का अनुमान इन हड्डियों के खुले मुखड़े से नहीं लगा सकते। इन हड्डियों के चहुंओर जो सौन्दर्य था अब उसका नाम तक बाकी नहीं है। मेरे जीवन के क्षणों में कोई योग्य-से-योग्य डॉक्टर भी कल्पना न कर सकता था कि मेरी हड्डियां मानव-शरीर की रूप-रेखा के वर्णन के काम आयेंगी। मुझे वह दिन याद है जब मैं चला करती थी तो प्रकाश की किरणें मेरे एक-एक बाल से निकलकर प्रत्येक दिशा को प्रकाशित करती थीं। मैं अपनी बांहों को घण्टों देखा करती थी। आह-ये वे बांहें थीं, जिसको मैंने दिखाईं अपनी ओर आसक्त कर लिया। सम्भवत: सुभद्रा को भी ऐसी बांहें नसीब न हुई होंगी। मेरी कोमल और पतली उंगलियां मृणाल को भी लजाती थीं। खेद है कि मेरे इस नग्न-ढांचे ने तुम्हें मेरे सौन्दर्य के विषय में सर्वथा झूठी सम्मति निर्धारित करने का अवसर दिया। तुम मुझे यौवन के क्षणों में देखते तो आंखों से नींद उड़ जाती और वैद्यक ज्ञान का सौदा मस्तिष्क से अशुध्द शब्द की भांति समाप्त हो जाता।

उसने कहानी का तारतम्य प्रवाहित रखकर कहा- 'मेरे भाई ने निश्चय कर लिया था कि वह विवाह न करेगा। और घर में मैं ही एक स्त्री थी। मैं संध्या-समय अपने उद्यान में छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठती तो सितारे मुझे घूरा करते और शीतल वायु जब मेरे समीप से गुजरती तो मेरे साथ अठखेलियां करती थी। मैं अपने सौन्दर्य पर घमण्ड करती और अनेकों बार सोचा करती थी कि जिस धरती पर मेरा पांव पड़ता है यदि उसमें अनुभव करने की शक्ति होती तो प्रसन्नता से फूली न समाती। कभी कहती संसार के सम्पूर्ण प्रेमी युवक घास के रूप में मेरे पैरों पर पड़े हैं। अब ये

सम्पूर्ण विचार मुझको अनेक बार विफल करते हैं कि आह! क्या था और क्या हो गया।

"मेरे भाई का एक मित्र सतीशकुमार था जिसने मैडिकल कॉलेज में डॉक्टरी का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया था। वह हमारा भी घरेलू डॉक्टर था। वैसे उसने मुझको नहीं देखा था परन्तु मैंने उसको एक दिन देख ही लिया और मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं कि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। मेरा भाई अजीब ढंग का व्यक्ति था। संसार के शीत-ग्रीष्म से सर्वथा अपरिचित वह कभी गृहस्थ के कामों में हस्तक्षेप न करता। वह मौनप्रिय और एकान्त में रहा करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि संसार से अलग होकर एकान्तप्रिय बन गया और साधु-महात्माओं का-सा जीवन बिताने लगा।

"हां, तो वह नवयुवक सतीशकुमार हमारे यहां प्राय: आता और यही एक नवयुवक था जिसको अपने घर के पुरुषों के अतिरिक्त मुझे देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। जब मैं उद्यान में अकेली होती और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के नीचे महारानी की भांति बैठती, तो सतीशकुमार का ध्यान और भी मेरे हृदय में चुटकियां लेता-परन्तु तुम किस चिन्ता में हो। तुम्हारे हृदय में क्या बीत रही है?"

मैंने ठंडी सांस भरकर उत्तर दिया- **"**मैं यह विचार कर रहा हूं कि कितना अच्छा होता कि मैं ही सतीशकुमार होता।**"**

वह हंसकर बोली- "अच्छा, पहले मेरी कहानी सुन लो फिर प्रेमालाप कर लेना। एक दिन वर्षा हो रही थी, मुझे कुछ बुखार था उस समय डॉक्टर अर्थात् मेरा प्रिय सतीश मुझे देखने के लिए आया। यह प्रथम अवसर था कि हम दोनों ने एक-दूसरे को आमने-सामने देखा और देखते ही डॉक्टर मूर्ति-समान स्थिर-सा हो गया और मेरे भाई की मौजूदगी ने होश संभालने के लिए बाध्य कर दिया। वह मेरी ओर संकेत करके बोला-'मैं इनकी नब्ज देखना चाहता हूं।' मैंने धीरे-से अपना हाथ दुशाले से निकाला। डॉक्टर ने मेरी नब्ज पर हाथ रखा। मैंने कभी न देखा कि किसी डॉक्टर ने साधारण ज्वर के निरीक्षण में इतना विचार किया हो। उसके हाथ की उंगलियां कांप रही थीं। कठिन परिश्रम के पश्चात् उसने मेरे ज्वर को अनुभव किया; किन्तु वह मेरा ज्वर देखते-देखते स्वयं ही बीमार हो गये। क्यों, तुम इस बात को मानते हो या नहीं।"

मैंने डरते-डरते कहा- "हां, बिल्कुल मानता हूं। मनुष्य की अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होना कठिन नहीं है।"

वह बोली- "कुछ दिनों परीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में डॉक्टर के अतिरिक्त और किसी नवयुवक का विचार तक नहीं। मेरा कार्यक्रम था सन्ध्या-समय वसन्ती रंग की साड़ी पहनकर बालों में कंघी, फूलों का हार गले में डालकर, दर्पण हाथ में लिये बाग में चले जाना और पहरों देखा करना। क्यों, क्या दर्पण देखना बुरा है?"

मैंन घबराकर उत्तर दिया- "नहीं तो।"

उसने कहानी का सिलसिला स्थापित रखते हुए कहा- "दर्पण देखकर मैं ऐसा अनुभव करती जैसे मेरे दो रूप हो गये हैं। अर्थात् मैं स्वयं ही सतीशकुमार बन जाती और स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब को प्रेमिका समझकर उस पर तन-मन न्यौछावर करती। यह मेरा बहुत ही प्रिय मनोरंजन था और मैं घण्टों व्यतीत कर देती। अनेकों बार ऐसा हुआ कि मध्यान्ह को पलंग पर बिस्तर बिछाकर लेटी और एक हाथ को बिस्तर पर उपेक्षा से फेंक दिया। जरा आंख झपकी तो सपने में देखा कि सतीशकुमार आया और मेरे हाथ को चूमकर चला गया...बस, अब मैं कहानी समाप्त करती हूं, तुम्हें तो नींद आ रही है।"

मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी। अत: मैंने नम्रता भरे स्वर में कहा- "नहीं, तुम कहे जाओ, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जाती है।"

वह कहने लगी- "अच्छा सुनो! थोड़े दिनों में ही सतीशकुमार का कारोबार बहुत बढ़ गया और उसने हमारे मकान के नीचे के भाग में अपनी डिस्पेन्सरी खोल ली। जब उसे रोगियों से अवकाश मिलता तो मैं उसके पास जा बैठती और हंसी-ठट्ठों में विभिन्न दवाई का नाम पूछती रहती। इस प्रकार मुझे ऐसी दवाएं भी ज्ञात हो गईं, जो विषैली थीं। सतीशकुमार से जो कुछ मैं मालूम करती वह बड़े प्रेम और नम्रता से बताया करता। इस प्रकार एक लम्बा समय बीत गया और मैंने अनुभव करना आरम्भ किया कि डॉक्टर होश-हवाश खोये-से रहता है और जब कभी मैं उसके सम्मुख जाती हूं तो उसके मुख पर मुर्दनी-सी छा जाती है। परन्तु ऐसा क्यों होता है? इसका कोई कारण ज्ञात न हुआ। एक दिन डॉक्टर ने मेरे भाई से गाड़ी मांगी। मैं पास बैठी थी। मैंने भाई से पूछा- 'डॉक्टर रात में इस समय कहां जायेगा?' मेरे भाई ने उत्तर दिया- 'तबाह होने को।' मैंने अनुरोध किया कि मुझे अवश्य बताओ वह कहां जा

रहा है? भाई ने कहा- 'वह विवाह करने जा रहा है।' यह सुनकर मुझ पर मूर्छा-सी छा गई। किन्तु मैंने अपने-आपको संभाला और भाई से फिर पूछा- 'क्या वह सचमुच विवाह करने जा रहा है या मजाक करते हो?' उसने उत्तर दिया- 'सत्य ही आज डॉक्टर दुल्हन लायेगा!"

"मैं वर्णन नहीं कर सकती कि यह बात मुझे कितनी कष्टप्रद अनुभव हुई। मैंने अपने हृदय से बार-बार पूछा कि डॉक्टर ने मुझसे यह बात क्यों छिपाकर रखी। क्या मैं उसको रोकती कि विवाह मत करो? इन पुरुषों की बात का कोई विश्वास नहीं।

"मध्यान्ह डॉक्टर रोगियों को देखकर डिस्पेन्सरी में आया और मैंने पूछा, 'डॉक्टर साहब! क्या यह सत्य है कि आज आपका विवाह है।' यह कहकर मैं बहुत हंसी और डॉक्टर यह देखकर कि मैं इस बात को हंसी में उड़ा रही हूं, न केवल लज्जित हुआ; बल्कि कुछ चिन्तित-सा हो गया। फिर मैंने सहसा पूछा- 'डॉक्टर साहब, जब आपका विवाह हो जायेगा तो क्या आप फिर भी लोगों की नब्ज देखा करेंगे। आप तो डॉक्टर हैं और अन्य डॉक्टरों की अपेक्षा प्रसिध्द भी हैं कि आप शरीर के सम्पूर्ण अंगों की दशा भी जानते हैं; किन्तु खेद है कि आप डॉक्टर होकर किसी के हृदय का पता नहीं लगा सकते कि वह किस दशा में है। वस्तुत: हृदय भी शरीर का भाग है।' "

मेरे शब्द डॉक्टर के हृदय में तीर की भांति लगे; परंतु वह मौन रहा।

'4.लगन का मुहूर्त बहुत रात गए निश्चित हुआ था और बारात देर से जानी थी। अत: डॉक्टर और मेरा भाई प्रतिदिन की भांति शराब पीने बैठ गये। इस मनोविनोद में उनको बहुत देर हो गई।

"ग्यारह बजने को थे कि मैं उनके पास गई और कहा- 'डॉक्टर साहब, ग्यारह बजने वाले हैं आपको विवाह के लिए तैयार होना चाहिए।' वह किसी सीमा तक चेतन हो गया था, बोला- 'अभी जाता हूं।' फिर वह मेरे भाई के साथ बातों में तल्लीन हो गया और मैंने अवसर पाकर विष की पुड़िया, जो मैंने दोपहर को डॉक्टर की अनुपस्थिति में उसकी अलमारी से निकाली थी शराब के गिलास में, जो डॉक्टर के सामने रखा हुआ था डाल दी। कुछ क्षणों के पश्चात् डॉक्टर ने अपना गिलास खाली किया और दूल्हा बनने को चला गया। मेरा भाई भी उसके साथ चला गया।"

"मैं अपने दो मंजिले कमरे में गई और अपना नया बनारसी दुपट्टा ओढ़ा, मांग में सिंदूर भर पूरी सुहागन बनकर उद्यान में निकली जहां प्रतिदिन संध्या-समय बैठा करती थी। उस समय चांदनी छिटकी हुई थी, वायु में कुछ सिहरन उत्पन्न हो गई थी

और चमेली की सुगन्ध ने उद्यान को महका दिया था। मैंने पुड़िया की शेष दवा निकाली और मुंह में डालकर एक चुल्लू पानी पी लिया। थोड़ी देर में मेरे सिर में चक्कर आने लगे, आंखों में धुंधलापन छा गया। चांद का प्रकाश मध्दिम होने लगा और पृथ्वी तथा आकाश, बेल-बूटे, अब मेरा घर जहां मैंने आयु बिताई थी, धीरे-धीरे लुप्त होते हुए ज्ञात हुए और मैं मीठी नींद सो गई।"

"डेढ़ साल के पश्चात् सुख-स्वप्न से चौंकी तो मैंने क्या देखा कि तीन विद्यार्थी मेरी हड्डियों से डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और एक अध्यापक मेरी छाती की ओर बेंत से संकेत करके लड़कों को विभिन्न हड्डियों के नाम बता रहा है और कहता है- 'यहां हृदय रहता है, जो विवाह और दु:ख के समय धड़का करता है और यह वह स्थान है जहां उठती जवानी के समय फूल निकलते हैं।' अच्छा अब मेरी कहानी समाप्त होती है। मैं विदा होती हूं, तुम सो जाओ।"